अध्याय-2

भारतीय अर्थव्यवस्था का एक सिंहावलोकन

अर्थव्यवस्था जो उत्पादित करती है अथवा घरेलू उत्पाद

पिछले अध्याय में हमने उत्पादन के एक सरल प्रकार के उदाहरण का वर्णन किया है जो भारत के गांवों में पांया जाता है। यह भूमि के एक छोटे से टुकड़े के स्वामित्व वाले किसान द्वारा किया जाने वाला उत्पादन है। यह गेहूं अथवा धान की फसल का उत्पादन उस तरीके से करने का प्रयत्न करता है जिसे वह सर्वाधिक लाभप्रद तरीका समझता है। जब तक उत्पादन का पैमाना वास्तव में काफी छोटा बना रहता है तब तक वो खेत का स्वामी या किसान अपने स्वयं के अथवा अपने परिवार के श्रम का ही प्रयोग करता है और अपने खेत पर किसान भी श्रमिक को किराए पर नहीं लगाता। वह अपने ही उपकरणों, पशुओं और बीज के स्टॉक (अर्थात् अपनी ही ''पूंजी'') और अपने ही व्यवसायिक कौशल (जिसे ''उद्यम'' कहा जाता है) का प्रयोग करता है। इस स्थिति में विभिन्न प्रकार के साधनों अथवा उत्पादन के कारकों (भूमि, श्रम, पूंजी और प्रबन्ध) के स्वामियों के बीच कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि उन सबको स्वयं किसान ही प्रदान करता है।

किन्तु आधुनिक काल में उत्पादन अधिक बड़े पैमाने पर और अधिक जटिल तरीकों से किया जाता है, विशेषकर उद्योगों तथा परिवहन, बैंकिंग व बीमा जैसी सेवाओं के क्षेत्र में। यद्यपि अभी भी हमारे यहां भारतीय गांवों में छोटे-छोटे पारिवारिक फार्मों पर ही खेती की जाती है और वे मुख्य रूप से परिवार के साधनों पर ही निर्भर होते हैं।

वास्तव में, हमारे देश समेत प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक दृष्टि से विकास कुछ इस प्रकार हुआ है कि कृषि उत्पादन का पैमाना भी तुलनात्मक रूप से बड़ा होता गया और ऐसे अमीर किसानों का उदय हो गया जो बाहरी मजदूरों को काम पर लगाते हैं, पूंजी (मुख्यत: वित्त) उधार लेते हैं और इस प्रकार वे छोटे किसानों के वर्ग से एकदम भिन्न एक अलग ही वर्ग बन गए। इसी प्रकार, बड़े पैमाने के उद्योगों को विकास के साथ-साथ अब उद्यमों का स्वामित्व और नियन्त्रण उन लोगों के पास नहीं रह गया जो औद्योगिक उत्पादन में अपना स्वयं का कौशल और श्रम (दस्तकारों के रूप में) लगाते हैं।

इस तरह आधुनिक युग में उत्पादन से आशय उत्पादन के लिए आवश्यक साधन प्रदान करने वाले लोगों के विभिन्न वर्गों के संयुक्त प्रयत्न से हो गया है : पूंजीपति उत्पादक उद्यम पर स्वामित्व व नियन्त्रण रखते हैं और लाभ कमाते हैं, पूंजीपति वित्तदाता को ऋण प्रदान करते हैं और ब्याज कमाते हैं, भूमि और इमारतों के स्वामी अपनी सम्पत्ति के प्रयोग के बदले लगान प्राप्त करते हैं, प्रबन्धक एवं अन्य कार्यकारी प्रशासक वेतन कमाते हैं और कामगार मज़दूरी के भुगतान के बदले अपना श्रम प्रदान करते हैं।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि एक आधुनिक अर्थव्यवस्था कृषि एवं उद्योगों के क्षेत्र में वस्तुओं का उत्पादन करने के अलावा परिवहन, वस्तुओं का भण्डारण, बैंकिंग, बीमा जैसी सेवाओं के उत्पादन के लिए भी व्यवस्था करती है। अत: अर्थव्यवस्था जो कुछ उत्पादन करती है वह अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत उत्पादकों एवं उद्यमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का समग्र योग होता है। इस समग्र योग को ही अर्थव्यवस्था का घरेलू उत्पाद कहा जाता है।

अर्थशास्त्री इस दृष्टि से वस्तुत: दो अवधारणाओं का प्रयोग करते हैं : सकल घरेलू उत्पाद (जी०डी०पी०) और शुद्ध घरेलू उत्पाद (एन०डी०पी०)

सकल घरेलू उत्पाद का पता लगाने के लिए हमें सर्वप्रथम एक वर्ष उत्पादित सभी वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य की गणना करनी होती है। किन्तु योग करते समय हमें यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि जिस वस्तु का किसी दूसरे के उत्पादन में प्रयोग किया गया है उस वस्तु के मूल्य की दोबारा गणना न हो। उदाहरण के लिए, जब हमें एक डबलरोटी के मूल्य की गणना करनी हो तो हमें इसमें से उस घाटे के मूल्य को घटा देना चाहिए जिस घाटे का प्रयोग इसके बनाने में किया गया है क्योंकि उसके मूल्य की गणना एक बार पहले हो चुकी है। दूसरे शब्दों में, हम उन सभी मध्यवर्ती वस्तुओं (जैसे आटा) जिनका उत्पादन में प्रयोग किया गया है, के मूल्यों को घटाने के बाद ही अन्तिम वस्तु (जैसे डबल रोटी) के मूल्य की गणना करते हैं।

इस प्रकार, सकल घरेलू उत्पाद (जी० डी० पी०) उत्पादन में प्रयुक्त भूमि, इमारतों और मशीनरी के मूल्य ह्रास को घटाए बिना एक वर्ष में उत्पादित समस्त ''अन्तिम'' वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों का कुल योग है। जब इस मूल्य-ह्रास को घटा दिया जाता है तो हमें शुद्ध घरेलू उत्पाद (एन० डी० पी०) प्राप्त हो जाता है।

यहां यह जानना भी रुचिकर होगा कि एक अर्थव्यवस्था में रहने वाले लोगों को दूसरे देशों से भी आय (उदाहरण के लिए व्यापार के माध्यम से) अथवा प्रेषित रकम प्राप्त हो सकती है। जब हम जी० डी० पी० में विदेशों से अर्जित शुद्ध आय (देश में आई प्रेषित रकम बाकी देश से बाहर भेजी गई प्रेषित रकम) को जोड़ देते हैं तो हम इसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी० एन० पी०) कहते हैं। जब हम इसी प्रकार की शुद्ध विदेशी आय को एन० डी० पी० में जोड़ते हैं तो उसे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (एन० एन० पी०) कहते हैं।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को एक देश की राष्ट्रीय आय भी कहा जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अपने आप में कुछ नहीं है बल्कि लोगों को लाभ, मजदूरी, ब्याज और लगान के रूप में जो कुछ प्राप्त होता है, उसी का योग है अर्थात् यह एन० एन० पी० उत्पादन करते समय उत्पादन के साधनों को प्राप्त आय ही है।

नीचे दी गई तालिका 5 बताती है कि भारत का शुद्ध घरेलू उत्पाद अर्थव्यवस्था में रहने वाले आय-अर्जकों के विभिन्न वर्गों के बीच कैसे बंट जाता है।

संस्थागत ढांचा

घरेलू उत्पाद का सृजन करने वाली उत्पादक क्रियाएं किसी एक अर्थव्यवस्था में कैसे काम करती हैं यह बहुत कुछ उसकी आर्थिक संस्थाओं की प्रकृति पर निर्भर करता है। आर्थिक संस्थाओं से हमारा आशय निजी व्यक्तियों अथवा सहकारी निकायों के स्वामित्व वाले छोटे व बड़े सभी उत्पादक उद्यमों और व्यवसायों, बैंकों, बीमा कम्पनियों और उत्पादक सेवाएं प्रदान करने वाली इसी प्रकार की अन्य वित्तीय संस्थाओं और इन सबसे ऊपर अर्थव्यवस्था के नियम में लगी सरकारी एजेंसियां जैसे केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालय, राज्य सरकारें, भारतीय रिजर्व बैंक आदि से है। ये सब मिलकर ही अर्थव्यवस्था के संस्थागत ढांचे को बनाते हैं।

तालिका-5

भारत के शुद्ध घरेलू उत्पाद में आम-अर्जकों के विभिन्न वर्गों का हिस्सा (1984-85)

	प्रचलित कीमतों पर राशि (100 करोड़ रु०)	एन० डी० पी० का प्रतिशत
मजदूरी, वेतन आदि	74.0	42.2
ब्याज	15.1	8.6
लगान	6.2	3.5
लाभ10.6	6.0	
स्व नियोजितों की आय	69.6	39.7
कुल एन० डी० पी०	175.5	100.0

भारतीय अर्थव्यवस्था के संस्थागत ढांचे की तीन मुख्य विशेषताएं हैं :

1. जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की कुल एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह एक बड़े सार्वजनिक क्षेत्र वाली मिश्रित अर्थव्यवस्था है।

किन्तु यहां हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में भारत का वर्णन केवल अर्थव्यवस्था के शहरी भाग पर ही लागू होता है। यह वह भाग है जहां हमारे मुख्य उद्योग या तो निजी क्षेत्र में हैं या सार्वजनिक क्षेत्र में। बैंकिंग और बीमा की बड़ी-बड़ी वित्तीय संस्थाएं जो ज्यादातर शहरी इलाकों में हैं वे भी सार्वजनिक और निजी क्षेत्र दोनों में हैं। एयरलाइंस और रोडवेज़ जैसी परिवहन सेवाएं तो सार्वजनिक क्षेत्र में हैं जबकि सड़क परिवहन ज्यादातर निजी क्षेत्र में ही हैं। ये सेवाएं भी ज्यादातर कस्बों में ही स्थित हैं। यद्यपि ये कस्बों और गांवों दोनों को ही अपनी सेवाएं प्रदान करती हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र का ग्रामीण भारत में मुश्किल से ही कोई अस्तित्व है। उदाहरण के लिए, भारतीय कृषि में निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में मिश्रित अर्थव्यवस्था का सामान्य विभाजन नहीं पाया जाता है। भारत में कृषि लगभग पूरी तौर पर निजी हाथों में ही है, सरकारी फार्मों की भूमिका तो नगन्य मात्र ही है।

2. दूसरी ध्यान देने योग्य विशेषता है कि भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। इसमें एक काफी बड़ा परम्परागत ग्रामीण क्षेत्र और एक छोटा-सा आधुनिक शहरी क्षेत्र पाया जाता है। जैसा कि हमने देखा ग्रामीण भारत मुख्य आर्थिक क्रियाएं कृषि से सम्बन्धित हैं जबकि प्रमुख उद्योग शहरी भाग में पाए जाते हैं।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था के संस्थागत ढांचे की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता भारतीय संविधान के संघीय ढांचे से आती है। संविधान के अन्तर्गत लोगों के आर्थिक जीवन को नियमित करने की शक्तियों को बहुत ही स्पष्ट ढंग से केन्द्र और राज्यों के बीच बांट दिया जाता है। देश की अधिकांश मुख्य आर्थिक क्रियाओं के निर्देशन और, यदि आवश्यक हो तो, नियन्त्रण की कुल मिलाकर जिम्मेवारी केन्द्र की ही है। उदाहरण के लिए, बिजली उत्पादन का काम मुख्य रूप से राज्य सरकारों के अधीन काम करने वाले राज्य बिजली बोर्डों के सीमा क्षेत्र में आता है। जबकि विजली-संयंत्रों की स्थापना से केन्द्र सरकार की ही मुख्य भूमिका होती है। इस प्रकार, देश की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित सरकारी संस्थाएं दो प्रकार की हैं, एक वे जो केन्द्र स्तर पर काम करती हैं और दूसरी वे जो राज्य स्तर पर काम करती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र और प्रदेश

भारतीय अर्थव्यवस्था के संस्थागत ढांचे की मुख्य विशषताओं के विवेचन के बाद हम इसे कई तरीकों से क्षेत्रों एवं प्रदेशों में विभाजित कर सके हैं–

1. एक तरीका जो स्वयं मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिभाषा के द्वारा ही सुलझाया गया है : सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के बीच विभाजन। यह विभाजन उद्यमों के स्वामित्व के आधार पर है।

2. अर्थव्यवस्था को क्षेत्रों में विभाजित करने का एक दूसरा तरीका उत्पादन क्रिया के तीन मुख्य प्रकारों के रूप में हो सकता है : (अ) ''प्राथमिक'' उत्पादन में लगे किसान, खाद्य उत्पादक आदि (मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले, (ब) ''द्वितीयक'' उत्पादन में लगे औद्योगिक उत्पादक (मुख्यत: शहरी क्षेत्रों में रहने वाले), और (स), ''तृतीयक'' उत्पादन क्रियाओं में लगे सेवाएं प्रदान करने वाले (जो शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में रहने वाले हैं)।

3. फिर, कभी-कभी एक विकासशील अर्थव्यवस्था को कस्बों और गांवों में निवास के आधार पर दो प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित करना भी उपयोगी रहता है : शहरी क्षेत्र और ग्रामीण क्षेत्र।

4. उद्यमों के स्वामित्व, क्रियाओं के प्रकार और शहरी ग्रामीण निवास इन तीन आधारों पर क्षेत्रों के वर्गीकरण के अलावा, भारतीय अर्थव्यवस्था का संघीय ढांचा एक और तरीके से भी इसके विभाजन के महत्त्व को बताता है, वह है : प्रदेशों अथवा राज्यों के रूप में विभाजन।

आगे के खण्डों में हम भारतीय अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित प्रकार के विभाजनों के बारे में संक्षेप में वर्णन करेंगे : 1. सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र, 2. प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र, 3. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र, और 4. इन विभाजनों के अनुसार भारत के शुद्ध घरेलू उत्पाद के वितरण के सन्दर्भ में भारत के राज्य।

स्वामित्व के अनुसार क्षेत्र : निजी और सार्वजनिक

हम पहले ही कह चुके हैं कि स्वामित्व के आधार पर उद्यमों को सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की संस्थाओं में विभाजित करने वाली ''मिश्रित अर्थव्यवस्था'' का विचार ग्रामीण भारत में कोई बहुत अधिक लागू नहीं हो पाता, क्योंकि कृषि और हमारे छोटे पैमाने के ग्रामीण उद्योग लगभग पूर्णतया निजी स्वामित्व के अन्तर्गत ही आते हैं। सार्वजनिक और निजी क्षेत्र का विभाजन मुख्य रूप से हमारे आधुनिक बड़े पैमाने के उद्योगों से सम्बन्धित उद्यमों और बैंकिंग, बीमा, हवाई, रेल और सड़क परिवहन जैसी सेवाएं प्रदान करने वाले उद्यमों पर ही लागू होता है।

भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के उद्यमों का विभाजन मुख्य रूप से भारतीय संसद के 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव से ही प्रारम्भ होता है। इसके अनुसार उद्योगों का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है।

प्रथम श्रेणी में वे उद्यम हैं जो आधारभूत महत्त्व के हैं। ये उद्योग हैं जैसे लोहा व इस्पात, पेट्रोलियम, वायु परिवहन, रेलवे आदि। इस श्रेणी की सभी नई इकाइयां सार्वजनिक क्षेत्र में ही स्थापित की जाती हैं।

दूसरी श्रेणी में 12 उद्योग आते हैं, ये पहली श्रेणी के उद्यमों की तुलना में थोड़े ही कम महत्त्व के हैं। इस सूची में शामिल हैं : ड्रग, उर्वरक, सड़क परिवहन, जहाजरानी और मशीनी औजार आदि। इस श्रेणी की नई इकाइयां सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में रह सकती हैं।

शेष सभी उद्योग तीसरी श्रेणी में आते हैं और इन्हें पूर्णतया निजी उद्यम के लिए छोड़ा गया है। पहली दो श्रेणियों के पुराने उद्यम जिन्हें निजी उद्यमियों द्वारा प्रारम्भ किया गया था वे अब भी निजी क्षेत्र में रह सकते हैं। लौह व इस्पात उद्योग में टाटा स्टील इस प्रकार का प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

तालिका-6

सकल घरेलू उत्पाद में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का हिस्सा

(प्रचलित कीमतों पर)

	1987-88		1981-82	
	000 करोड़ रु०	प्रतिशत	000 करोड़ रु०	प्रतिशत
जी०डी०पी०	293	100	143	100
सार्वजनिक क्षेत्र	80	27.3	30	21.0
निजी क्षेत्र	213	72.7	113	79.0

उपरोक्त तालिका 6 भारतीय अर्थव्यवस्था के घरेलू उत्पाद में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के योगदान को बताती है। इस तालिका से पता चलता है कि 1981-82 से 1987-88 के बीच कैसे सार्वजनिक क्षेत्र के हिस्से में वृद्धि हुई है।

...याओं के प्रकार के अनुसार क्षेत्र

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि हम तीन मुख्य प्रकार के व्यवसायों के बीच अन्तर कर सकते हैं : प्राथमिक द्वितीयक और तृतीयक।

हमें हमेशा यह याद रखना होगा कि प्राथमिक उत्पाद फसलों, फल, मांस, वनोत्पाद पत्थर उत्खनन खनन जैसे प्राकृतिक उत्पादों का उत्पादन करते हैं। प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादकों के मुख्य घटक वे लोग हैं जो कृषि कार्य में लगे हुए हैं। द्वितीयक क्षेत्र में वे लोग शामिल होते हैं जो मनुष्य निर्मित वस्तुओं के विनिर्माण में लगे होते हैं। ये मुख्य रूप से अर्थव्यवस्था के शहरी भाग में बड़े पैमाने के उद्योगों में लगे होते हैं, किन्तु कुछ मात्रा में छोटे पैमाने के ग्रामीण उद्योगों (जैसे लकड़ी के सामान, बर्तन आदि के उत्पादन करने वाले) में भी होते हैं। तृतीयक क्षेत्र वस्तुओं का नहीं बल्कि सेवाओं का उत्पादन करता है। प्रशासन, परिवहन बैंकिंग एवं अन्य सेवाओं में लगे लोगों का सम्बन्ध इसी क्षेत्र से होता है। नीचे की तालिका 7 बताती है कि किस प्रकार भारत का शुद्ध घरेलू उत्पाद प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों से आता है।

...ामीण एवं शहरी क्षेत्र

हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र काफी बड़ा है और उसकी तुलना में शहरी क्षेत्र काफी छोटा है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि समय के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र छोटा होता जाता है और शहरी क्षेत्र बड़े। आज के ग्रामीण क्षेत्र में भारत की कुल जनसंख्या का तीन चौथाई से अधिक (76.7 प्रतिशत) भाग आता है। किन्तु शहरी क्षेत्र का आकार लगातार बढ़ता जा रहा है और कुछ अनुमानों के अनुसार सन् 2001 तक ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या का 60 प्रतिशत से अधिक भाग नहीं होगा।

किन्तु फिर भी कई अर्थों में शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण है और रहेगा। जनसंख्या के अधिकांश भाग को रखने के अलावा, ग्रामीण क्षेत्र शुद्ध घरेलू उत्पाद में भी सबसे बड़े हिस्से का योगदान करता है।

तालिका 7

भारत का शुद्ध घरेलू उत्पाद (1987-88)

	प्रचलित कीमतों पर राशि (000 करोड़ रु०)	प्रतिशत
प्राथमिक	89.8	34.6
द्वितीयक क्षेत्र	67.4	26.0
तृतीयक क्षेत्र	102.4	39.4
योग	259.6	100.0

1987-88 में शुद्ध घरेलू उत्पाद में कृषि एवं खनन का हिस्सा 30 प्रतिशत से अधिक था जबकि विनिर्माण उद्योगों का हिस्सा 20 प्रतिशत से भी कम था। इन दोनों के बीच का अन्तर एक तरह से ग्रामीण क्षेत्र के तुलनात्मक महत्त्व को बताता है। आर्थिक विकास के साथ-साथ यह अन्तर कम होता जा रहा है। किन्तु अभी भी आगे आने वाले काफी लम्बे समय तक यह बड़ा ही बना रहेगा।

शहरी क्षेत्र के विकास के लिए भी ग्रामीण क्षेत्र काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है क्योंकि यह मुख्य उद्योगों को आधारभूत कच्चा माल प्रदान करता है। देश का ग्रामीण क्षेत्र खाद्य के अलावा, अर्थव्यवस्था को काफी बड़ी मात्रा में गैर-खाद्यान्न कृषि उत्पादन भी प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, 1986-87 में इसने 7 मिलियन गांठे कपास, 7 मिलियन गांठे जूट, 11 मिलियन टन तिलहन और 186 मिलियन टन गन्ने का उत्पादन किया था। ये हमारे कुछ बड़े उद्योगों के लिए आधारभूत कच्चे माल हैं। खानों से लोहे व अन्य धातुओं के रूप में कच्चा माल तथा कोयले के रूप में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ईंधन प्राप्त होता है। इस प्रकार हमारे शहरी क्षेत्र की समृद्धि बहुत कुछ ग्रामीण क्षेत्र की समृद्धि पर ही निर्भर करती है।

भारत के अधिकांश क्षेत्रों में खेती अभी भी बहुत कुछ उत्पादन के परम्परागत तरीकों पर ही निर्भर करती है। देश के अधिकांश भागों में भू-धारण की प्रणालियां भी दमनकारी ही हैं। भूमि सुधार और उत्पादन की विधियों का आधुनिकीकरण ही एक मात्र ऐसा उपाय है जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन में रुकावट पैदा कर भारत के आर्थिक विकास की गति को कम करने वाली अत्यधिक विषमता और सामाजिक अन्याय को दूर किया जा सकता है।

विभिन्न क्षेत्रों का महत्त्व और उनकी अन्तर्निर्भरता

हमने देखा कि उद्यमों के स्वामित्व के आधार पर निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के रूप में अर्थव्यवस्था के विभाजन का महत्त्व अर्थव्यवस्था के विचारों में से निकलता है। इसी तरह, व्यवसायों के अनुसार क्षेत्रों के विभाजन का महत्त्व तब प्रकट होता है जब हम यह महसूस करते हैं कि भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र सामान्यतया उत्पादन के परम्परागत साधनों का प्रयोग करता है जबकि द्वितीयक क्षेत्र तुलनात्मक रूप से आधुनिक है। तृतीयक क्षेत्र में दोनों तत्त्व पाए जाते हैं, बैंकिंग और वायु परिवहन जैसे आधुनिक तत्त्व भी और ग्रामीण बैलगाड़ी परिवहन जैसे परम्परागत तत्त्व भी।

निजी और सार्वजनिक क्षेत्र परस्पर सम्बन्धित भी हैं और परस्पर निर्भर भी। प्रत्येक उद्यम को फिर चाहे वह निजी क्षेत्र में हो अपना सार्वजनिक क्षेत्र में हो उसे कई तरह से दोनों ही क्षेत्रों से अन्य उद्यमों से

साथ व्यवहार करना पड़ता है। उदाहरण के लिए इमारतों के निर्माण में लगी एक फर्म को सीमेंट और इस्पात खरीदना पड़ता है। इसे परिवहन सुविधाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। इसे बैंकों से उधार लेना पड़ता है, इसे वस्तुओं का बीमा करना पड़ता है। इन सब कामों के लिए उसे उन सब फर्मों के साथ लेन-देन करना पड़ता है जो सीमेन्ट और स्टील का उत्पादन करती हैं, हवाई जहाजरानी अथवा सड़क परिवहन की सेवाएं प्रदान करती हैं, तथा बैंकों व बीमा कम्पनियों के रूप में काम करती हैं। जैसा कि हमने पीछे देखा है कि इनमें से कुछ फर्में सार्वजनिक क्षेत्र में होती हैं और कुछ निजी क्षेत्र में। इस प्रकार, इन दोनों में से किसी भी एक क्षेत्र में उत्पादकता का स्तर काफी हद तक हमारी भवन निर्माण कम्पनी के उत्पादकता के स्तर को प्रभावित करेगा। इस तरह यद्यपि ये दोनों क्षेत्र अलग-अलग हैं किन्तु इसके साथ ही ये परस्पर सम्बन्धित और परस्पर निर्भर भी हैं।

इसी प्रकार, प्राथमिक क्षेत्र उस कच्चा माल (लोहा, अयस्क, जूट, लकड़ी आदि) का उत्पादन करता है जिसका प्रयोग द्वितीयक क्षेत्र विनिर्माण प्रक्रियाओं के लिए करता है। इसके बदले द्वितीयक क्षेत्र बहुत सी वस्तुएं (उर्वरक, कृषि मशीनरी, खनन उपकरण आदि) प्रदान करता है जो प्राथमिक क्षेत्र में उत्पादन के लिए आवश्यक होती है।

तृतीयक क्षेत्र सेवाएं प्रदान करता है जो प्राथमिक और द्वितीयक दोनों क्षेत्रों के लिए आवश्यक होती हैं। दूसरी ओर, सेवा क्षेत्र भी प्राथमिक क्षेत्र (जैसे खाद्य सामग्री) और द्वितीयक क्षेत्र (जैसे इमारतें, केलकुलेटिंग मशीनें आदि के उत्पादों के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता।

इस तरह प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र एक दूसरे से सम्बन्धित और एक दूसरे पर निर्भर हैं और एक की उत्पादकता दूसरे की उत्पादकता को प्रभावित करती है।

इन क्षेत्रों का पारस्परिक सम्बन्ध और अन्तनिर्भरता शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था का शहरी क्षेत्र तुलनात्मक रूप से आधुनिक होता है और ग्रामीण क्षेत्र परम्परागत होता है। वस्तुतः शहरी क्षेत्र द्वितीयक क्षेत्र के साथ मिला होता है और इसी तरह प्राथमिक क्षेत्र मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र तक सीमित रहता है। अतः यह आश्चर्यजनक नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्र में खाद्य एवं कच्चे माल का उत्पादन करने वाले गांव और शहरी क्षेत्र में विनिर्माण वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कस्बे एक दूसरे से सम्बन्धित और एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं।

आर्थिक विकास समूची अर्थव्यवस्था के सब क्षेत्रों के विकास पर निर्भर करता है। स्पष्टतः इनमें से कोई भी एक क्षेत्र प्रगति नहीं कर सकता यदि कोई दूसरा क्षेत्र पिछड़ी हुई अवस्था में है, क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों में इसके उत्पादन की मांग पर निर्भर करता है। यही कारण है कि हमारे ग्रामीण क्षेत्र की पिछड़ी हुई अवस्था और हमारे गांवों में रहने वाले लोगों की गरीबी और बेरोज़गारी हमारे तुलनात्मक रूप से आधुनिक एवं कार्यकुशल शहरी क्षेत्र की प्रगति को असम्भव बना देती है। इस प्रकार, समूची अर्थव्यवस्था की विकास की दर में किसी भी क्षेत्र की गरीबी और निम्न उत्पादकता के कारण रुकावट पैदा होगी।

विभिन्न क्षेत्रों का उत्पादन, उनकी उत्पादकता और आर्थिक विकास

किसी भी एक क्षेत्र की उत्पादकता से हमारा आशय है उस क्षेत्र में लगाए गए साधनों से उत्पादित उत्पादन की मात्रा का माप। उदाहरण के लिए, जब उतनी ही मात्रा में साधनों को खर्च करके अधिक उत्पादन किया जाता है. हम कहेंगे कि उत्पादकता में वृद्धि हुई है?

हम ऊपर देख चुके हैं कि हम क्षेत्रों की चाहे किसी भी रूप में परिभाषा करें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार, सार्वजनिक क्षेत्र का उत्पादन निजी क्षेत्र के

उत्पादन से सम्बन्धित होता है, शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के उत्पादन जुड़े होते हैं; तथा प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों के उत्पादन परस्पर सम्बन्धित होते हैं। अतः किसी भी एक क्षेत्र की उत्पादकता दूसरे प्रत्येक क्षेत्र की उत्पादकता पर निर्भर करती है।

उदाहरण के लिए यदि निजी क्षेत्र के उद्यमों की उत्पादकता नीची है तो प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादनों का प्रयोग करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की उत्पादकता भी नीची हो जाएगी। इसी प्रकार, यदि उर्वरकों का उत्पादन करने वाले उद्योग कम उत्पादन करने लग जाएंगे तो कृषि की उत्पादकता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। चूंकि आर्थिक विकास कुल मिलाकर सब क्षेत्रों की गतिविधियों पर निर्भर करता है, किसी भी एक क्षेत्र की उत्पादकता में गिरावट आर्थिक विकास की गति को मंद कर देगी और इसी तरह उत्पादकता में वृद्धि आर्थिक विकास की गति को तेज़ कर देगी।

राज्यों के बीच शुद्ध घरेलू उत्पाद का वितरण

भारत जैसी संघीय अर्थव्यवस्था में केवल यह जान लेना ही पर्याप्त ही नहीं है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों अथवा प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों अथवा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच घरेलू उत्पाद का वितरण कैसे होता है। इसके साथ ही यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि विभिन्न प्रदेशों अथवा अधिक सही शब्दों में भारत के विभिन्न राज्यों के बीच इसका वितरण किस प्रकार से है। चूंकि अलग-अलग राज्यों की जनसंख्या के आकार में काफी बड़ा अन्तर है अतः हमें वास्तव में प्रत्येक राज्य के प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद अथवा आय की ओर देखना चाहिए। इसे राज्य के घरेलू उत्पाद (एस० डी० पी०) को इनकी जनसंख्या से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। नीचे की तालिका 8 में भारत के राज्यों को एस० डी० पी० और प्रति व्यक्ति आय के आंकड़ों को दिया गया है।

तालिका-8

राज्य घरेलू उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय (1987-88)

(राज्यानुसार प्रचलित कीमतों पर)

	एस० डी० पी० (करोड़ रु०)	प्रति व्यक्ति आय (रु०)
आन्ध्र प्रदेश	13,883	2,333
आसाम	5,259	2,204
बिहार	14,184	1,802
गोवा	641	5,280
गुजरात	12,279	3,223
हरियाणा	5,897	3,925
हिमाचल प्रदेश	1,382	2,908
जम्मू एवं कश्मीर	1,614	3,334
कर्नाटक	10,381	2,486
केरल	6,681	2,371
मध्य प्रदेश	11,897	2,020
महाराष्ट्र	26,718	3,793
मणिपुर	416	2,531

	एम० डी० पी० (करोड़ रु०)	प्रति व्यक्ति आय (रु०)
उड़ीसा	5,707	1,957
पंजाब	8,930	4,719
राजस्थान	8,556	2,150
तमिलनाडु	14,493	2,732
उत्तर प्रदेश	26,731	2,146
पश्चिम बंगाल	18,203	2,988
दिल्ली	4,447	6,075
पाण्डिचेरी	286	3,994

भारत में जनसंख्या स्थिति

भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है। केवल चीन की ही विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या है। हमारे देश की जनसंख्या का आकार ही बड़ा नहीं है बल्कि यह प्रति वर्ष 2.3 प्रतिशत से भी ऊंचीदर से काफी तेज़ी से बढ़ती जा रही है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 84.39 करोड़ है। भारत की जनसंख्या की 2.3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर की तुलना में चीन की वृद्धि दर केवल 1.8 प्रतिशत ही है जो बताती है कि भारत शीघ्र ही विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश हो जाएगा।

एक बड़ी जनसंख्या की आर्थिक दृष्टि से लाभ और हानियां दोनों होती हैं। एक बड़ी कार्यशील जनसंख्या इस बात को सुनिश्चित बनाती है कि देश के औद्योगिक और कृषि विकास के लिए श्रम शक्ति हमेशा पर्याप्त बनी रहेगी। उदाहरण के लिए, भारत की कार्यशील जनसंख्या लगभग 30 करोड़ है। अत: अर्थव्यवस्था में केवल शारीरिक श्रम शक्ति की पूर्ति ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उन लोगों की पूर्ति भी पर्याप्त है जो सब स्तरों पर सब प्रकार के कौशलों में प्रशिक्षित किए जा सकते हैं। इस प्रकार भारत जैसे देश में, जिसके पास काफी बड़ी जनसंख्या है और शिक्षा एवं प्रशिक्षण की काफी विकसित प्रणाली है, डाक्टरों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, प्रशासकों, अध्यापकों और अन्य सब प्रकार की उच्च श्रेणी की मानव शक्ति काफी बड़ी मात्रा में हो सकती है। वास्तव में, कुछ आकलनों के अनुसार, भारत तकनीकी मानव-शक्ति की आपूर्ति की दृष्टि से विश्व में तीसरा बड़ा देश है।

बड़ी जनसंख्या का एक काफी बड़ा नुकसान यह है कि देश के घरेलू उत्पादन में चाहे जितनी वृद्धि हो बड़ी जनसंख्या के कारण यह वृद्धि व्यक्ति के दृष्टिकोण से काफी छोटी दिखाई देती है। सकल घरेलू उत्पाद (जी० डी० पी०) की दृष्टि से भारत का विश्व में 12वां स्थान है। किन्तु भारत की विशाल जनसंख्या ने इसे प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से विश्व के सबसे गरीबतम देशों में से एक बनाकर रख दिया है।

गरीबी और बेरोज़गारी

भारत की गरीबी मुख्य रूप से इस तथ्य पर निर्भर करती है कि इसकी अपनी काफी बड़ी कार्यशील जनसंख्या को लाभकारी रोजगार दे पाना सम्भव नहीं हो सका है। इसका मुख्य कारण यह है कि कम विकसित देश होने के कारण भारत के पास इतनी पर्याप्त भूमि और पूंजी नहीं है जो इस बड़ी जनसंख्या के लिए पूरी पड़ सके।

किसी एक देश में उपलब्ध भूमि की भौतिक मात्रा पूरी तौर पर प्रकृति द्वारा सीमित दिखाई देती है। किन्तु उपजाऊ भूमि की उपलब्धता अनिवार्य रूप से खती के अन्तर्गत वर्तमान में विद्यमान क्षेत्र के द्वारा सीमित नहीं होती है और न ही कृषित भूमि की उर्वरता अथवा उत्पादकता हम जिस सीमा तक पहुंच गए हैं उसके द्वारा ही सीमित होती है। आधुनिक तकनोलॉजी और भूमि सुधारों का क्रियान्वयन कृषि के लिए उपलब्ध भूमि और इसकी उत्पादकता दोनों को बढ़ा सकते हैं। किन्तु अच्छी सिंचाई, अच्छे बीजों, उर्वरकों, कीटनाशी दवाओं एवं अन्य इन्पुट्रस के प्रयोग अथवा अच्छी भण्डारण एवं परिवहन सुविधाओं के प्रबन्ध के द्वारा भूमि को उन्नत बनाने के लिए अर्थव्यवस्था द्वारा किसान को अधिक साधन प्रदान करने होंगे क्योंकि ये सब सुधार काफी महंगें हैं। जब पूंजी तुलनात्मक रूप से सीमित होती है, जैसा कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था में सामान्यतया रहता है, तब उत्पादकता स्वाभाविक रूप से ही नीचे रहती है।

उत्पादकता के नीचा रहने के कारण बड़ी कार्यशील जनसंख्या होने का एक लाभ समाप्त हो जाता है क्योंकि इस जनसंख्या का एक भाग बेरोज़गार रहता है। भारत की कार्यशील जनसंख्या तो पहले से ही बेरोज़गारी पीड़ित है। इतना ही नहीं बल्कि जनसंख्या में तेज़ी से वृद्धि होने के कारण बेरोज़गार श्रमिकों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। यह अनुमान लगाया जाता है कि 1981 से 1991 के बीच भारत की कार्यशील जनसंख्या में 7 करोड़ से भी अधिक की वृद्धि होगी। यदि जनसंख्या के साथ-साथ काम के अवसरों में भी पर्याप्त रूप से वृद्धि नहीं होती तो श्रम शक्ति में होने वाली इन वृद्धियों में से एक काफी बड़ी संख्या बेरोज़गार अथवा अर्द्ध बेरोज़गार बनी रहेगी। इस प्रकार तेज़ी से बढ़ती हुई जनसंख्या, घटती हुई उत्पादकता, बढ़ती हुई बेरोज़गारी और भारत के लोगों की गरीबी के बीच बड़ा स्पष्ट सम्बन्ध है।

विकसित देशों की तुलना में भारत के लोगों की गरीबी निश्चित ही काफी बड़ी है। इस गरीबी को गहराई को निम्नलिखित तथ्यों की सहायता से अधिक अच्छी तरह देखा जा सकता है। एक व्यक्ति के लिए न्यूनतम पोषक तत्त्वों की आवश्यकता लगभग 2200 कैलोरीज़ प्रतिदिन मानी गई है। जो उस व्यक्ति को अपने दैनिक भोज से मिलनी ही चाहिए। अनुमान है कि 1984-85 में भारत की जनसंख्या का 40 प्रतिशत इस अर्थ में निरपेक्ष रूप से गरीब था कि उन्हें यह न्यूनतम भोजन भी नहीं मिल पाता था अर्थात् वे गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जी रहे थे।

देश की जनसंख्या के चोटी के एक बहुत ही छोटे से भाग में अत्यधिक समृद्धि के पाए जाने से भारत की गरीबी का चित्र और भी अधिक निराशाजनक हो जाता है। अनुमान है कि जनसंख्या के चोटी के 10 प्रतिशत के पास राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत है जबकि निम्नतम 10 प्रतिशत के पास आय का 4 प्रतिशत से भी कम है।

कीमत-वृद्धि और स्फीति

गरीबी और बेरोज़गारी की समस्याओं से तब और भी अधिक दयनीय स्थिति का निर्माण हो जाता है जब कीमतों में भी वृद्धि होती जाती है। कीमतों में होने वाली लगातार वृद्धि अथवा "स्फीति" के समाज पर गम्भीर दुष्परिणाम होते हैं क्योंकि यह अमीरों की तुलना में गरीबों पर ही अधिक चोट करती है। जब कीमतों में वृद्धि होती है, लाभों में वृद्धि होती है किन्तु निश्चित आय वर्ग के लोगों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जो बेरोज़गार अथवा अत्यधिक गरीब होते हैं उनको और भी अधिक कष्ट उठाना पड़ता है।

1981-90 के दशक में भारत में लगभग 9 प्रतिशत की दर से उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में लगातार वृद्धि होती रही है। स्फीति की दर उतनी अधिक तो नहीं है जितनी कि ब्राजील (145 प्रतिशत) अथवा मेक्सिको (73 प्रतिशत) में है किन्तु यह निश्चित ही पाकिस्तान (7 प्रतिशत) और मलेशिया (3.6 प्रतिशत) से काफी अधिक है, अत: यह हम सबके लिए चिन्ता का विषय है।

आर्थिक विकास का स्तर-कुछ संकेतक

हम पहले ही कह चुके हैं कि आर्थिक विकास को केवल मात्र सकल राष्ट्रीय उत्पाद अथवा जी०एन०पी० से नहीं मापा जा सकता क्योंकि जी०एन०पी० का स्तर यह नहीं बता पाता कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपभोग, शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन प्रत्याशा आदि कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं की दृष्टि से लोगों के कल्याण की क्या स्थिति रहती है। ऊर्जा (बिजली, तेल, कोयला आदि) का भी उपभोग स्तर भी आर्थिक विकास का एक अच्छा संकेतक माना जाता है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण से सम्बन्धित होता है। इन सब संकेतकों के सन्दर्भ में भारत का आर्थिक विकास काफी कमज़ोर है, यद्यपि समय के साथ-साथ इन सबमें सुधार हो रहा है क्योंकि पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में निवेश के परिणाम धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं।

1986 के बर्ष में भारत की प्रति व्यक्ति आय जी० एन० पी० 290 अमेरिकन डालर थी जबकि इसकी तुलना में चीन की 300 डालर (किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका की 17,480 डालर) थी। प्रति व्यक्ति खाद्य उपभोग 2100 कैलोरीज़ से थोड़ा-सा ही अधिक थी, अर्थात् यह न्यूनतम पोषणं स्तर के बराबर था। जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा आज़ादी के बाद से निश्चित ही 30 से बढ़कर अब 59 हो गई है। किन्तु यदि श्रीलंका के 70 और अधिकांश विकसित देशों (75-78) की तुलना में काफी कम है।

भारत की साक्षरता दर 1961 में 24 प्रतिशत से बढ़कर 1986 में 40 प्रतिशत हो गई थी, किन्तु यह अभी भी काफी नीची ही है। हमारे यहां अभी भी प्रत्येक 3700 लोगों के पीछे केवल 1 डाक्टर है जब कि चीन में 1730 लोगों के पीछे 1 डाक्टर है।

भारत का प्रति व्यक्ति ऊर्जा का उपभोग (आर्थिक विकास का एक दूसरा सूचक) 208 कि०ग्रा० (उपभोग किए गए तेल के समक्ष गणना करने पर) है जबकि चीन में यह 532 कि०ग्रा० है।

ये सब संकेतक इस बात को बताते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रति व्यक्ति विकास की दृष्टि से अभी भी काफी लम्बी यात्रा तय करनी है। किन्तु इसके साथ ही यह भी याद रखा जाना चाहिए कि विश्व में कुल उत्पादकों की दृष्टि से भारत का दर्जा काफी ऊंचा है जैसे कृषि में चौथा, विनिर्माण उद्योगों में चौदहवां, बिजली उत्पादन में ग्यारहवां आदि। सकल घरेलू उत्पाद (जी० डी० पी०) की दृष्टि से संसार के सब देशों में भारत का स्थान बारहवां है।

उपभोक्ताओं के अधिकार-उपभोक्ता संरक्षण

हमने बताया है कि आर्थिक विकास केवल मात्र जी० एन० पी० के आकार पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि रहन-सहन के स्तर के अन्य कई संकेतकों पर भी निर्भर करता है, जिनमें से कुछ के बारे में हमने ऊपर बताया है। स्पष्टतया, यह उपभोक्ताओं के अधिकारों पर भी निर्भर करता है अर्थात् इस बात पर भी निर्भर करता है कि उत्पादकों के अनुचित व्यापार व्यवहारों में उपभोक्ता वस्तुओं के क्रेताओं की किस सीमा तक रक्षा की जाती है। उद्योगों के विकास के साथ-साथ बाज़ार में कई नए उत्पाद आते रहते हैं। जीवन के बदलते हुए तौर-तरीकों के साथ-साथ उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करना प्रारम्भ कर देते हैं जिनका उन्होंने पहले कभी प्रयोग नहीं किया था। वे नई वस्तुओं की ओर मुख्यत: विज्ञापनों के माध्यम से आकर्षित होते हैं और अक्सर इस वात का निर्णय करने में समर्थ नहीं हो पाते कि उन्हें सही जानकारी दी जा रही है अथवा केवल रंगीन सपने ही दिखाए जा रहे हैं अथवा विज्ञापन की जा रही वस्तु की श्रेष्ठता के बारे में गलत ही चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है। पिछले कई वर्षों से भारत में बड़े व्यावसायिक समूहों से उपभोक्ताओं और छोटे उत्पादकों की सुरक्षा करने की दृष्टि से 'एकाधिकारी एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार आयोग' काम कर रहा है। किन्तु सब प्रकार की एवं सब आकारों के उद्योगों की तेज़ी से वृद्धि होने तथा नये इलेक्ट्रोनिक माध्यम (टी० वी० और रेडियो) के विज्ञापनों के जबरदस्त प्रभाव के कारण

भारत में उपभोक्ता की स्थिति काफी दयनीय हो गई है। एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार अधिनियम के अलावा 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम भी पास किया गया है और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय स्तर तक भी उपभोक्ता संरक्षण मंचों का गठन किया गया है। इसने उपभोक्ताओं को अपनी शिकायतों को अधिकारों के सामने प्रस्तुत करने और उन्हें ठीक करवाने का अवसर प्रदान किया है। किन्तु इस शिकायत निवारण तन्त्र के अलावा, एक विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए एक सुव्यवस्थित उपभोक्ता-शिक्षण की आवश्यकता भी होती है। उपभोक्ताओं को केवल उनके अधिकारों के बारे में ही पता नहीं होना चाहिए बल्कि उनको यह भी ठीक-ठाक, पता होना चाहिए कि बाज़ार में कौन-कौन सी नई वस्तुएं आ रही हैं। जिस प्रकार से उत्पादक को एक कौशल को अर्जित करने की आवश्यकता होती है, उसी तरह आधुनिक उपभोक्ता को सही किस्म की वस्तुओं को चुन सकने, और यह पता लगाने कि कब और कौन सी वस्तुएं खराब हैं, एक प्रकार के कौशल की आवश्यकता रहती है। एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसका बढ़ने के साथ-साथ आधुनिकीकरण भी हो रहा है उसे काफी बड़ी मात्रा में शिक्षण के विकास की आवश्यकता रहती है ताकि जिन लोगों के लिए विकास की आवश्यकता है उनके आर्थिक विकास की विषय-वस्तु की सुरक्षा की जा सके।

अभ्यास-प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की तीन मुख्य विशेषताओं मिश्रित अर्थव्यवस्था, विकासशील अर्थव्यवस्था और संघीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में इसका संक्षेप में सिंहावलोकन कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था किस प्रकार सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में विभाजित है वर्णन कीजिए।
3. आप अर्व्यवस्था के प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों के बीच कैसे अन्तर करेंगे ?
4. भारत में ग्रामीण और शहरी क्षेत्र कैसे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं ?
5. "आर्थिक विकास सभी क्षेत्रों के विकास पर निर्भर करता है"। क्या आप इस कथन को समझा सकते हैं ?
6. भारतीय अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की स्थिति की भूमिका के बारे में संक्षिप्त नोट लिखिए।
7. भारत के आर्थिक विकास के मुख्य संकेतक बताइए। क्या आप उपभोक्ता के अधिकारों के रक्षण की मात्रा को विकसित का एक संकेतक मानेंगे ?

❑❑❑